३४ गाथा हो गयी। ३५वीं। देखो! यह ऋषभदेव भगवान की स्तुति निर्ग्रन्थ आचार्य मुनि हैं, वे भी करते हैं। ऐसा उस प्रकार का भाव आता है, इसलिए निर्ग्रन्थ योगीश्वर भी भक्ति करते हैं। नियमसार में भी समाधि अधिकार में पहली गाथा लेते हुए लिया है कि सर्वज्ञ की स्तुति जिन योगीश्वर भी अशुभ वंचनार्थ—अशुभ पाप के भाव से बचने के लिये अथवा शुद्ध के अभाव के काल में अथवा अशुद्ध के नाश के लिये जिनेश्वर की भक्ति जैन योगीश्वर भी करते हैं। नेमचन्दभाई! मुनि भी करते हैं। है न? जिन योगीश्वर भी करते हैं, ऐसा है वहाँ? अशुभ को छोड़ने के लिये। नाश के दो-तीन अर्थ किये हैं। नाश के लिये, छोड़ने के लिये, बचने के लिये। समझ में आया? यह भाव आता अवश्य है। भक्ति का, पूजा का, राग की मन्दता का, बहुमान सर्वज्ञ परमात्मा की प्रतिमा का या सर्वज्ञ परमात्मा की उपस्थिति में भगवान का। किन्तु वह पुण्यबन्धन का कारण है, ऐसा ज्ञानी समझते हैं और (उससे) रहित आत्मा के स्वभाव की सन्मुख की जो एकाग्रता (होती है), उतना निश्चय सत्य सच्चा धर्म है। परन्तु यह दो नय का कथन यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि अन्यवादी समझ नहीं सकते। ३५।

गाथा ३५

भिण्णाण परणयाणं एक्केक्कमसंगयाणया तुज्झ।
पावंति जयम्मि जयं मज्झम्मि रिऊण किं चित्तं।।३५।।

अर्थ - हे भगवन्! हे प्रभो! आपके नय, परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले, भिन्न-भिन्न, ऐसे परवादियों के नय (कुनय) रूपी वैरियों के मध्य में तीनों जगत में विजय को प्राप्त होते हैं; इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं।

भावार्थ - परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले तथा एक-दूसरे के विरोधी ऐसे शत्रु, जिनमें एकता है तथा एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं; ऐसे योद्धाओं के द्वारा जिस प्रकार

बात की बात में जीत लिये जाते हैं तो जैसे उन शत्रुओं को जीतने में कोई आश्चर्य नहीं है; उसी प्रकार के प्रभो! जो परवादियों के नय परस्पर में एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं रखनेवाले हैं, भिन्न-भिन्न हैं; ऐसे उन नयों को यदि परस्पर में सम्बन्ध रखनेवाले तथा अभिन्न आपके नय जीत लेवें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

गाथा - ३५ पर प्रवचन

भिण्णाण परणयाणं एक्केक्कमसंगया णया तुज्झ।
पावंति जयम्मि जयं मज्झम्मि रिऊण किं चित्तं।।३५।।

हे **भगवन्!** देखो! यह भी एक स्तुति है। सर्वज्ञ के ज्ञान का जो अंश नीचे है, उन्हें तो पूर्ण ज्ञान है परन्तु उन्होंने कथन किया है, उस श्रुतज्ञान प्रमाण कि जो आत्मा के शाश्वत स्वभाव को जाने, वर्तमान पर्याय शुभराग को भी जाने। एक साथ जाने, उसका नाम प्रमाण ज्ञान कहा जाता है। उस प्रमाण ज्ञान के दो भाग:—एक निश्चय, एक व्यवहार। ऐसे जो (दो) नय प्रमाण के अंश, आचार्य महाराज (कहते हैं), इस प्रकार से प्रभु, हे भगवान! हे प्रभु! **आपके नय, परस्पर में सम्बन्धरहित भिन्न ऐसे परवादियों के नय (कुनय) रूपी वैरियों के मध्य में तीनों जगत में विजय को प्राप्त होते हैं; इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं।**

दूसरे तो कहते हैं कि बस, व्यवहार अर्थात् राग। ऐसा आत्मा का स्वभाव त्रिकाल शुद्ध है, उसके आश्रय से धर्म होता है, वैसे राग के आश्रय से भी धर्म होता है। यह तो दो नय विरोध हो गया। दोनों का मेल और सम्बन्ध रहा नहीं। भगवान का नय तो दोनों का सम्बन्ध रखता है। सम्बन्ध अर्थात ? निश्चय से तो स्वभाव के आश्रय से कल्याण (होगा) और राग के आश्रय से पुण्यबन्धन का कारण है, इस प्रकार दो नय का सम्बन्ध करते हैं। वह एकान्त ऐसा माननेवाले हैं कि पुण्यबन्ध से—व्यवहार से भी कल्याण होता है और निश्चय से भी (कल्याण होता है), वे तो परस्पर नय के शत्रु हुए, विरोध हुआ।

जो प्राणी, जिनके योद्धा परस्पर कलहवाले हैं, वे बैरी जिसके विरोधी योद्धा अनबनवाले हैं, उन्हें बात की बात में वे योद्धा उनको जीत लेते हैं क्योंकि योद्धाओं का

मेल नहीं और इन योद्धाओं को मेल है। क्या कहा इसमें ? हजारीमल ! समझ में आया ? परस्पर सम्बन्ध नहीं रखनेवाले तथा एक-दूसरे के विरोधी ऐसे शत्रु। शत्रु इकट्ठे हुए हों १००-२००-५०० तो एक-दूसरे के अन्दर विरोधी होते हैं। उनका मेल नहीं होता। ऐसे जो शत्रु, जिनमें परस्पर एकता है तथा एक-दूसरे के विरोधी नहीं—ऐसे योद्धाओं द्वारा जैसे बात की बात में जीत लिये जाते हैं। **तो जैसे उन शत्रुओं को जीतने में कोई आश्चर्य नहीं है।**

उसी प्रकार हे प्रभु! जो परवादियों के नय परस्पर में एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं रखनेवाले हैं, भिन्न-भिन्न हैं; ऐसे उन नयों को यदि परस्पर में सम्बन्ध रखनेवाले तथा अभिन्न... अभिन्न अर्थात् ? जहाँ आत्मा निश्चय से नित्य है, वहाँ ही आत्मा पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। इन परस्पर नयों का इस प्रकार से सम्बन्ध है। व्यवहार से वे कहते हैं कि आत्मा अनित्य ही है और आत्मा नित्य ही है, वे एक-दूसरे के अन्दर ज्ञान के नय विरोधता को पाते हैं। शत्रु विरोधवाले हों, एक-दूसरे को मेल न हो, उसे शत्रु जीत लेते हैं। उसमें वापस विरोध निकाले। देखो ! इसमें एक-दूसरे को विरोध नहीं होना चाहिए। परन्तु विरोध का अर्थ उसका नाम। **विरोध्वंसिनी**—नहीं आता ? **'उभयनय विरोध्वंसिनी स्यातपदांके।'** (समयसार कलश ४) इसका अर्थ—एक ओर आत्मा ऐसा कहा जाता है कि वस्तु शुद्ध त्रिकाल सच्चिदानन्द है। दूसरी अपेक्षा से कहा जाता है कि पर्याय में-अवस्था में यह विकार है, विकार का परिणमन है। वे एक-दूसरे के विरोधी लगते हैं, परन्तु विरोध नहीं है। विरोध को ध्वंस करनेवाली भगवान की वाणी है। व्यवहार से अशुद्ध है, यह बराबर है। निश्चय से शुद्ध है, यह बराबर है।

अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु एकरूप से है और पर्याय से अनेकरूप है। ये दो नय परस्पर विरुद्ध लगते हैं। परन्तु विरोध नहीं है। दोनों का सम्बन्ध है। जिस अपेक्षा से एक है, उस अपेक्षा से अनेक नहीं है। जिस अपेक्षा से अनेक है, उस अपेक्षा से एक नहीं है। अज्ञानी, (ऐसा मानता है कि) जिस अपेक्षा से अनेक है तो अनेक है और अनेक ही है। एक है, वह एक ही है। इस प्रकार आत्मा में अनन्त गुण हैं तो अनन्त गुण भिन्न हैं तो भिन्न ही है। एकान्त कहता है। ऐसा नहीं है। अनन्त गुण, गुण लक्षण से भिन्न होने पर भी वस्तुदृष्टि से वे गुण अभिन्न हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार दूसरे प्रकार से कहें तो आत्मा ज्ञायक चैतन्यस्वरूप, शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है, उसकी रुचि-परिणति, वह धर्म है और तो भी उससे विरुद्ध शुभराग— भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया भाव ऐसा आये बिना रहता नहीं। तथापि वह निश्चय से विरोध होने पर भी उस काल में उसकी व्यवहार से मैत्री भी गिनने में आती है। क्यों? कि उस जाति की कषाय की मन्दता, अकषाय की दृष्टि और स्थिरता होवे, तब ऐसा भाव, पूर्ण अकषाय न हो, उसे हुए बिना नहीं रहता। यह दो नय का सम्बन्ध है। समझ में आया? वे कहते हैं कि दो नय का सम्बन्ध करो। किस प्रकार से? व्यवहार से भी धर्म होता है। पूजा, दान। लो! उसमें और एक तर्क किया था। ऐसा कहते हैं कि भगवान का उपदेश पर की दया का नहीं है। पर की दया पाल सकता है कोई? तब तो पर ठूंठ हो गया। परपदार्थ की अवस्था जीवन और मरण कोई आत्मा दूसरे का कर सकता है? बिल्कुल नहीं। तथापि उपदेश में ऐसा आता है कि दूसरे जीव को नहीं मारना, दूसरे जीव को दुःख नहीं देना। इसका अर्थ यह कि उसे ऐसा भाव आता है। वह भाव आने पर भी दूसरे को बचाया जा सकता है, यह बात इसमें सिद्ध नहीं होती। वे कहते हैं कि दूसरे को बचाने का भाव आता है, तो दूसरे को बचा सकता ही है। यह तो परस्पर ज्ञान के अंश-नय विरोधता को पाते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह गहन बात वीतराग के नय आचार्य कहते हैं। समयसार में कहते हैं न, प्रभु! तेरे नय जाल इन्द्रजाल जैसा है। एक ओर कहते हैं कि आत्मा त्रिकाल आनन्द का कन्द है, दूसरे प्रकार से कहते हैं कि उसकी पर्याय में वर्तमान दुःखदशा है। परन्तु आनन्द है, उसमें दुःख आया कहाँ से? अरे! सुन तो सही। यह विरोध नहीं है। आनन्द उसका स्वभाव होने पर भी, उसकी विपरीत अवस्था में दुःख है। यदि दशा में आनन्द हो तो मुक्त होने का पुरुषार्थ अर्थात् प्रयत्न करने का नहीं रहता। कहो, समझ में आया इसमें?

तो कहते हैं, महाराज! आपकी जो ज्ञान की अपेक्षाओं के कथन हैं, वे परस्पर विरुद्ध नहीं हैं, परस्पर सुमेलवाले हैं। अज्ञानियों के कथन परस्पर विरोध है-विरुद्ध है। और उन विरोध के नय के योद्धा में आपके नय सम्बन्धवाले-मेलवाले वे उन्हें जीत लें, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। लोग अनेकान्त की व्याख्या ही दूसरी करते हैं। व्यवहार से भी धर्म (होता है)। दो नय को समकक्ष रखना। मोतीलालजी! क्या कहता है तू? दो नय

हैं, यह बराबर है, परन्तु एक व्यवहार को अनित्यनय का विषय वर्तमान क्षणिक रागादि हैं। निश्चयनय का विषय अभेद अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध ध्रुव स्वरूप है। इस प्रकार दो नय को कहे तो उन नय का सम्बन्ध, सम्बन्ध है। दोनों को सम्बन्ध है। ऐसे सम्बन्ध की दृष्टि बराबर समझकर स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता करे, उसे मोह का नाश हुए बिना नहीं रहता। विरोध का नाश करनेवाली है। वे (अज्ञानी के) अकेले विरोध को उत्पन्न करनेवाले हैं। ३६।

गाथा ३६

अण्णस्स जए जीहा कस्स सयाणस्स वण्णणे तुज्झ।
जच्छ जिण तेवि जाया सुरगुरुपमुहा कई कुंठा।।३६।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! ऐसा संसार में कौन-सा पुरुष समर्थ है कि जिसकी जिह्वा उत्तम ज्ञान के धारक आपका वर्णन करने में समर्थ हो ? क्योंकि बृहस्पति आदि जो उत्तम कवि हैं, वे भी आपका वर्णन करने में मन्दबुद्धि हैं।

भावार्थ - संसार में बृहस्पति के बराबर पदार्थों के वर्णन करने में दूसरा कोई उत्तम कवि नहीं है क्योंकि वे इन्द्र के भी गुरु हैं, किन्तु हे जिनेन्द्र! आपका गुणानुवाद करने में वे भी असमर्थ हैं, अर्थात् उनकी बुद्धि में भी यह सामर्थ्य नहीं, जो आपका गुणानुवाद वे कर सकें क्योंकि आपके गुण संख्यातीत तथा अगाध हैं। जब बृहस्पति की जिह्वा भी आपके गुणानुवाद करने में हार मानती है, तब अन्य साधारण मनुष्यों की जिह्वा आपका गुणानुवाद कर सके - यह बात सर्वथा असम्भव है।

गाथा - ३६ पर प्रवचन

अण्णस्स जए जीहा कस्स सयाणस्स वण्णणे तुज्झ।
जत्थ जिण ते वि जाया सुरगुरुपमुहा कई कुंठा।।३६।।

ओहो! हे जिनेश! हे प्रभु! इस प्रकार सन्मुख रखकर (कहते हैं), सर्वज्ञ परमात्मा

हे नाथ! **ऐसा संसार में कौन-सा पुरुष समर्थ है कि जिसकी जिह्वा उत्तम ज्ञान के धारक आपका वर्णन करने में समर्थ हो?** लो! **वर्णन करने में समर्थ हो...** लो! और वर्णन कर सकते हैं और फिर कहते हैं कि वर्णन करने में समर्थ किसी की जीभ नहीं होती। समझ में आया? 'जो पद सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में कह सके नहीं वह।' और कहते हैं कि कहा। किस अपेक्षा से? समझ तो सही! कि इस वाणी द्वारा उसका पूर्ण स्वरूप अनुभवगम्य है, वह आ नहीं सकता। परन्तु किसी प्रकार से कथन कहने में न आवे, तब तो जगत में उपदेश और दूसरों को समझाने में निमित्त, इस बात का ही नाश हो जाता है। कथंचित् वक्तव्य न हो तो इनकार करनेवाला कि नहीं, ऐसा नहीं होता... नहीं, ऐसा नहीं होता... ऐसा नहीं होता—ऐसा भी कहा न उसने? कथंचित् वक्तव्य है और किसी अपेक्षा से वीतराग का स्वरूप वाणी द्वारा पूर्ण आ नहीं सकता। यह किसकी जीभ है, कहते हैं प्रभु! कि आपके स्वरूप का वर्णन कर सके! एक समय में जिसने तीन काल तीन लोक एक समय में प्रकाशित किये और उसमें एक समय में पूर्ण ध्वनि—दिव्यध्वनि निकली प्रभु! आपका वर्णन (करने में) किसकी जीभ जगत में है कि कर सके?

क्योंकि बृहस्पति आदि जो उत्तम कवि हैं, वे भी... कुलगुरु लिखा है। इसका अर्थ कवि लिखा है इसमें। देवों के जो गुरु अर्थात् बाहर में बड़े। ऐसे बृहस्पति जैसे कवि भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। स्तुति के विकल्प से पूर्ण स्वरूप का वर्णन आ नहीं सकता। ऐसा कहना चाहते हैं, हों! **आदि जो उत्तम कवि हैं, वे भी आपका वर्णन करने में मन्दबुद्धि हैं।** प्रभु! हम क्या वर्णन करें? आप सर्वज्ञ परमात्मा, पूर्णानन्द की प्राप्ति (हुई है)। विकल्प द्वारा और वाणी द्वारा उसका क्या पार पड़े? समझ में आया? पार अर्थात्? पूर्णता की व्याख्या विकल्प द्वारा भी ज्ञात नहीं होती, कही नहीं जा सकती और वाणी द्वारा भी कही नहीं जा सकती। वह तो अन्तर्दृष्टि से इस आत्मा के सर्वज्ञपद को जाना जा सकता है, पहिचाना जा सकता है, माना जा सकता है। बाकी वाणी द्वारा और विकल्प द्वारा प्रभु पार नहीं पाया जा सकता।

संसार में बृहस्पति के बराबर पदार्थों के वर्णन करने में दूसरा कोई उत्तम कवि नहीं है, क्योंकि वे इन्द्र के भी गुरु हैं... बड़े हैं। **किन्तु हे जिनेन्द्र! आपका**

गुणानुवाद करने में वे भी असमर्थ हैं... उनकी बुद्धि में भी इसका सामर्थ्य नहीं है कि जिससे वे आपके गुणानुवाद कर सकें। आड मारता है। आहाहा! प्रभु! हम बाल हैं। हम आपकी स्तुति और यह वस्तु एक समय का प्रभु, और उस समय के प्रभु की प्रगट हुई प्रभुता, उसका क्या वर्णन करें? प्रभु! हम तो मन्दबुद्धि हैं। ऐसा करके अपनी निर्मानता बताकर भगवान की भक्ति और स्तुति कर रहे हैं।

प्रभु! आप एक समय में, समय एक और अंश तीन अनन्त गुणों के। छोटे में छोटा समय कि जिसके दो भाग नहीं होते और एक समय में तीन अंश—उत्पाद, व्यय और ध्रुव। ओहो! यह आपने जाने और आपका ज्ञान इन्हें पहुँच गया, ऐसा कहकर मेरा स्वभाव भी ऐसा ही है।

स्थिरता एक समय में ठाणे उपजे विणसे सबहि,
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कबहि,
अबधु नटनागर की बाजी, क्या जाने ब्राह्मण काजी।

ब्राह्मण अर्थात् वेद आदि और काजी अर्थात् कुरान। क्या जाने अन्दर में? ऐसा जो आत्मा का स्वरूप भगवान, समय छोटा और अंश तीन। अनन्त गुणों के तीन अंश एक समय में। आहाहा! अनन्त गुण एक आत्मवस्तु में एक समय में, उसके अंश की पर्याय भी अनन्त अनन्त पर्याय, उन्हें आपने एक समय में ऐसे सबको जान लिया। यह वह आपका ज्ञान प्रभु! बृहस्पति जैसे भी आपकी स्तुति में हार मान जाते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा चैतन्य माहात्म्यवाला पदार्थ, वे बृहस्पति जैसे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते, ऐसा कहकर भक्ति करते हैं।

हे जिनेन्द्र! आपका गुणानुवाद करने में वे भी असमर्थ हैं, अर्थात् उनकी बुद्धि में भी यह सामर्थ्य नहीं, जो आपका गुणानुवाद वे कर सकें क्योंकि आपके गुण संख्यातीत... क्या कहते हैं? और वाणी तो थोड़ी है, शब्द थोड़े हैं। यह वस्तु। यह वस्तु एक संसार के साधारण पदार्थ को (नहीं कहा जा सकता)। गाय का घी हो, उसकी मिठास का वर्णन नहीं किया जा सकता। घी-गाय का ताजा होता है सवेरे? उसका भी वर्णन (नहीं किया जा सकता)। क्या करे वर्णन? कैसा मीठा? समझ में आया? गाय का घी कैसा मीठा? केले जैसा? मिश्री जैसा? कैसा?

प्रभु! इस जगत के पदार्थों का इस प्रकार से भी वर्णन (नहीं किया जा सकता) तो आप तो ओहोहो! सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण जहाँ असंख्य-असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त प्रकाश का पुंज प्रगट हो गया है। प्रभु! वे आपके गुण क्या कह सकते हैं? बृहस्पति जैसे नहीं कह सकते तो दूसरा कौन कह सकता है? कहो, समझ में आया?

तथा अगाध हैं। अगाध-अगाध। ओहो! देखो न! सवेरे शक्ति (का वर्णन चलता है)। ४७ शक्ति में वर्णन, वह वर्णन। गजब बात! यह तो सर्वज्ञ से वर्णन आया है न! पश्चात् मुनियों ने कहा है। द्रव्य-वस्तु परमात्मा के स्वभाव से परिपूर्ण शक्ति से भरपूर पदार्थ है। उसके समय की अवस्था में विकार आदि हो, वह विकार शक्ति का कार्य वह नहीं है। शक्ति में है ही नहीं। है और शक्ति का कार्य नहीं। यह तो वाणी! वजुभाई! संसार है, पर्याय में संसार-संसरण है। (वह) गुण का कार्य नहीं है। तब गुण का कार्य नहीं तो पर्याय तो गुण का ही कार्य है। पर्याय की व्याख्या... नहीं आता? 'गुण विकारा पर्याया:'। गुण का विशेष कार्य, वह पर्याय है। तो यह विकार संसार है, वह विशेष कार्य नहीं? नहीं, नहीं। सुन तो सही। हम तो पर्यायदृष्टि से ऐसा कहते हैं कि उसके संसार का भाव है। वस्तु दृष्टि से उसके गुणों में विकार हो और विकार कर सके, ऐसी उसमें ताकत ही नहीं है। लो! यह परस्पर विरोध लगता है।

मुमुक्षु : पर्याय .... स्वतन्त्र ...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है। गुण में ताकत नहीं कि संसार को उत्पन्न करे। संसार को उत्पन्न करे (ऐसी) गुण में ताकत होवे तो संसार का कभी अभाव होगा ही नहीं। भगवान यह संख्यातीत आपके गुण और वाणी जहाँ बृहस्पति की भी जीभ आपका गुणानुवाद करने में अपनी हार मानती है। हार मानती है अर्थात?

देखो न! कल भक्ति की बात नहीं आयी थी उसको? वह कहे, हम भक्ति करते हैं। वह लड़का कहे। हाँ, प्रभु! आपका भक्त हूँ, आपकी भक्ति करता हूँ। यह बात कितनी ली! समझ में आया? न्याय में तो बात इसे विचारनी चाहिए न? निर्मान-निर्मान। प्रभु! मैं तो आपका दासानुदास हूँ। मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? उसको कहे, मेरे लाखों और करोड़ों... धूल में भी नहीं। लाखों कैसे, वह तो पहले खारेक का दिया नहीं? क्या कहलाता है? बादाम। बादाम के ऊपर का छिलका दिया और खारेक का बीच का कस

दिया। भारी, भाई! तू होशियार। ऊपर खाया, दूसरे में अन्दर का दिया अर्थात् दोनों व्यर्थ। ऐसा नहीं है। जहाँ-जहाँ जो वस्तु का कस और तत्त्व है, उसके ऊपर नजर जानी चाहिए और उस अर्पणता में जानी चाहिए।

संसार में अच्छे घर और अच्छे चावल नहीं बनाता? और भगवान के नाम से जहाँ-जहाँ चावल साधारण, कपड़े साधारण और मन्दिर साधारण (करे)। तुझे कीमत नहीं है। तुझे भगवान की भक्ति की कीमत नहीं है। ऐसा कहना चाहते हैं। वजुभाई! घर के कपड़े-बपड़े अच्छे। ऐसा अमुक स्त्री के लिये पाँच सौ की साड़ी, हजार की साड़ी, पाँच हजार का अमुक यह। यहाँ करना हो तो कहे, परन्तु ऐ... सब इतने में हो जाएगा। भक्ति हो जाएगी, जाओ। ...तुझे भक्ति नहीं है। तुझे सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति त्रिलोकनाथ परमात्मा के विरह में उनकी प्रतिमा के प्रति भी तुझे जो भक्ति चाहिए, वैसी भक्ति नहीं है। तथापि वह भक्ति का भाव है शुभ। इस जगत में वह धर्म नहीं है। प्रभु! यह तेरे कथन की शैली और ज्ञान उसे कौन कह सकता है? प्रभु! वह तो तू ही कहनेवाला है। तेरे गुणानुवाद दूसरा कोई नहीं कर सकता।

अन्य साधारण मनुष्यों की जिह्वा आपका गुणानुवाद कर नहीं सकती-ऐसे सर्वथा असम्भव विकल्पों से क्या काम करावे? विकल्प की वृत्ति से क्या हो? ऐसा कहते हैं। विकल्प उठता है, वह तो राग है और स्वरूप तो रागातीत है, विकल्पातीत है, वचनातीत है, कायातीत है, मनातीत है। ऐसे स्वभाव की बात तो प्रभु! विकल्परहित ही ज्ञात होती है और अनुभव में आती है और वेदन में आती है। इस विकल्प से पार पाया जाए, ऐसा नहीं है। यह साथ ही कहते हैं। कहो, समझ में आया?

इन्द्र भक्ति करते हैं, जिसकी महिमा। कुन्दकुन्दाचार्य भी भगवान की पूजा, भक्ति, यात्रा करने निकले थे। लो! जो कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि विकल्प हेय है, जहर है, बन्ध है, छोड़नेयोग्य है। श्रद्धा में बात करे छोड़नेयोग्य। परन्तु इस अस्थिरता के काल में ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। परन्तु श्रद्धा में यदि उसे आदरणीय माने और यह मुझे ठीक है - ऐसा माने तो राग को ठीक माननेवाले वीतराग को पहिचानते नहीं। वीतराग को जानते नहीं। वीतराग, वीतरागभाव को प्रशंसा करते हैं, वीतरागभाव का ही आदर करने का कहते हैं, परन्तु तो भी उसका विरोधी राग आता है। प्रभु! यह शैली और यह आपका ज्ञान, वह बृहस्पति जैसे भी पूर्ण नहीं कर सके। ३७।

गाथा ३७

सो मोहत्थेण रहि ओ पयासिओ पहु सुपहो तएवईया।
तेणाज्जवि रयणजुआ णिव्विग्घं जंति णिव्वाणं।।३७।।

अर्थ - हे प्रभुओं के प्रभु! हे जिनेन्द्र! आपने उस समय मोहरूपी चोर से रहित उत्तममार्ग का प्रकाश किया था; इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र के धारी भव्य जीव इस समय भी उस मार्ग से ही बिना क्लेश के मोक्ष को चले जाते हैं।

भावार्थ - यदि मार्ग साफ तथा चोरों के भय से रहित होवे तो मनुष्य जिस प्रकार बिना विघ्न के उस मार्ग से चले जाते हैं। उस प्रकार हे भगवन्! आपने भी जिस मार्ग का उपदेश दिया है, वह मार्ग भी साफ तथा सबसे बलवान मोहरूपी चोर से रहित है; इसलिए जो भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय के धारी हैं, वे बिना किसी विघ्न के सुख से उस मार्ग से मोक्ष को चले जाते हैं।

सारार्थ - मोक्षमार्ग में गमन करनेवाले प्राणियों को यदि कोई रोकनेवाला है तो मोहरूपी चोर ही है, इसीलिए भव्य जीव सहसा मोक्ष को नहीं जाते, परन्तु हे भगवन्! आपने मोहरहित मार्ग का वर्णन किया है, इसलिए भव्य जीव, निर्विघ्नरूप से मोक्ष को चले जाते हैं।

गाथा - ३७ पर प्रवचन

सो मोहथेणरहिओ पयासिओ पहु सुपहो तए तइया।
तेणज्ज वि रयणजुआ णिव्विग्धं जंति णिव्वाणं।।३७।।

आहाहा! हे प्रभु के प्रभु! सर्वज्ञ परमात्मा की पर्याय की पूर्णता को पहिचानकर कहते हैं। हे प्रभु के प्रभु! गणधरों के भी प्रभु! हे **जिनेन्द्र! आपने उस समय मोहरूपी चोर से रहित...** मोहरूपी चोर रहित। **उत्तममार्ग का प्रकाश किया था;...** क्या कहते हैं? आपने तो अन्दर जो लुटेरे हैं, पुण्य-पाप की सावधानी का मिथ्यात्वभाव और

शुभाशुभभाव वे सब लुटेरे हैं, मोहभाव लुटेरे हैं। उस लुटेरे से बचने के लिये आपने जो मार्ग कहा, वह निर्विघ्न चलता जाए, ऐसा मार्ग आपने कहा है। मोह में तो सब आया या नहीं यह ? कि मोह नहीं होगा इसे ? या दृष्टान्त सब यह देते हैं कि देखो ! ऐसा दृष्टान्त देते हैं न ? रेत का। ऐड़ी ले, तेरे ऐड़ी की छाप बन जाए और अमुक निकल जाए। ऐसा दृष्टान्त दिया था। अब वह तो सब लड़के भी बातें करते हैं, सुन न अब। और वापस क्या बात की है इसमें ? कि नव तत्त्व एक-दूसरे के विरोधी हैं। इसलिए धर्म नव तत्त्व में आया नहीं। इसलिए पाप से विरोधी पुण्य धर्म है। ऐई ! अरे ! भगवान ! तुझे क्या हुआ ? समझ में आया ?

परमात्मा ने कही हुई बात मोहरहित है। मोहरहित है। तो पुण्य और पाप का भाव मोह है, राग है। पर सन्मुख के झुकाववाली वृत्ति है और वह धर्म नहीं, तथापि व्यवहार धर्म की दशा आये बिना नहीं रहती। यह बात... निश्चयधर्म इससे प्राप्त नहीं होता, तथापि निश्चयधर्म में इसे निमित्तरूप से आये बिना नहीं रहता और निमित्त भी तब कहलाता है कि निश्चय की परिणति करता होवे तो। कहो, समझ में आया ?

एक धर्मध्यान की बात आयी थी जरा। वह समाधि में आता है न ? समाधि के दूसरे श्लोक में। ऐसा कि धर्म की परिणति, उसे धर्मध्यान कहते हैं। ऐसा आता है। उपयोग में बैठा है, वह परिणति जो है, उसे धर्मध्यान कहते हैं। स्वआश्रित धर्म परिणति को धर्मध्यान कहते हैं। स्वआश्रित। आत्मा भगवान परिपूर्ण प्रभु के सन्मुख होकर जो परिणति प्रगट हुई, वह धर्मध्यान है। निश्चय धर्मध्यान है। तथापि पूर्ण वीतरागता न हो, वह भक्ति का शुभभाव व्यवहार उसे उपचार से धर्मध्यान कहने में आता है। ऐसा मार्ग आपने मोहरहित वर्णन किया है। उसमें मोह का अंश है नहीं। मोह तो लुटेरा चोर है। बराबर होगा यह ? क्या कहा ?

उत्तममार्ग का प्रकाश किया था; इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र के धारी भव्य जीव इस समय भी उस मार्ग से ही निर्विघ्नरूप से बिना क्लेश के मोक्ष को चले जाते हैं। आपने उस समय वीतरागभाव वर्णन किया था। एक ही मोक्षमार्ग वर्णन किया। रागरहित शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और आनन्द की रमणता, इसे आपने मोक्ष वर्णन किया, उस समय।

हम उस मार्ग में अभी तब वर्णन किया उसमें हम चले आ रहे हैं। ओहोहो! कहो, समझ में आया? इसमें तो कुछ राग-बाग की बात भी नहीं आती। राग आया है। परन्तु उसे कहते हैं कि मार्ग में गिनते नहीं है। आपने मार्ग में गिनाया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आता है तो भक्ति तो करते हैं, परन्तु मार्ग में आपने गिनाया नहीं। व्यवहारमार्ग का अर्थ ही आपने वास्तव में मार्ग में गिनाया नहीं।

इस समय भी... मुनि हैं, आचार्य हैं, छठवें गुणस्थान में हैं। विकल्प उठे तब। छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान है। कहते हैं, प्रभु! आपने उस समय प्रकाशित किया था न, वह मार्ग निर्विघ्नरूप से मोहरहित (होकर) हम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में चले आ रहे हैं। हम भी मोक्ष के पन्थ में स्थित हैं। यह आपने प्रकाशित किया, इसलिए स्थित हैं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निमित्त से कथन तो ऐसे ही होवे न! आपने प्रकाशित किया। और वापस ऐसा कहे, और इतने-इतने पुण्य के नजदीक में आये, निश्चयनय तक आये, वह सब पुण्य का फल है और तुम (कहते हो) कि पुण्य हेय है। कहो, पुण्य के कारण आये होंगे निश्चय तक? मोतीलालजी! बहुत लिखा है। बहुत लिखते हैं। कहा, पढ़ो तो सही। शान्तिभाई को कहा। लाये थे न, शान्तिभाई ने पढ़ा, हों! है या नहीं? भावनगर में बोले थे, कौन जाने उठ जाते हैं इस समय। कहो, समझ में आया?

बिना क्लेश के मोक्ष को चले जाते हैं। यदि मार्ग साफ तथा चोरों के भय से रहित होवे तो मनुष्य... देखो न, अभी यह मोटरें कैसे चलती हैं यह? क्या कहलाता है? सीमेण्ट कंकरीट का रास्ता और यह क्या कहलाता है दूसरा? डामर का। उत्तर में जाते हैं तो जहाँ हो वहाँ रास्ता ऐसा। भूले पड़े तो वहाँ सीमेण्ट कंकरीट का रास्ता। नहीं? ५० मील। कैसा गाँव कहा? ऐसे से ऐसे घूमे। चारों ओर जंगल में भी रास्ता सब सीमेण्ट कंकरीट का। मोटर सरसराहट चलती ही जाए। ५०-६०, ६०-६० मील। चोर भी नहीं और वहाँ कोई विघ्न करनेवाला भी नहीं। इसी प्रकार प्रभु! आपने ऐसा मार्ग कहा और चोररहित। साफ-साफ और चोररहित। आहाहा! **मनुष्य जिस प्रकार बिना विघ्न के उस मार्ग से चले जाते हैं। उस प्रकार हे भगवन! आपने भी जिस मार्ग का उपदेश दिया है, वह मार्ग भी साफ है..** देखो! आपके उपदेश में तो निर्लेप, निर्विकल्प वीतरागता की ही बात करते हैं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...वीतरागता की महिमा आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा करते हैं। हे नाथ! आपने तो... आहाहा! दिव्यध्वनि का प्रपात खिराया। निमित्त से कथन ऐसा ही आता है न। ऐसा यह मार्ग साफ और चोर रहित आपने बताया है। राग साफ मार्ग होगा? महिमा है नहीं, तथापि राग आये बिना रहता नहीं। ऐसा ही निश्चय और व्यवहार का मेल और सम्बन्ध है। आहाहा! ... वहाँ तो जिन योगीश्वर स्तुति करते हैं, हों! ऐसा आया है। समाधि अधिकार में। उसमें पहली गाथा है न? अशुभवंचनार्थ सर्वज्ञ की स्तुति जिनयोगीश्वर भी करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी यात्रा के लिए निकले थे। बहुमान का भाव आता है। साक्षात् परमात्मा न हो तो उनकी स्थापना निक्षेप के प्रति धर्मी को (भक्ति) उपजती है तो राग का लक्ष्य पर के ऊपर ही जाता है। कहीं राग का आश्रय स्व में नहीं आता, तथापि प्रभु! आपने तो साफ और चोर रहित मार्ग कहा है। कहो, समझ में आया?

वह मार्ग भी साफ है तथा सबसे बलवान मोहरूपी चोर से रहित है। इसलिए जो भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान... ऐसी स्वरूप की गुल्ली / ईंट अन्दर पड़ी है। उसकी जिसने प्रतीति की, ज्ञान करके रमणता की, यह आपने कहा था। आपने पूरे बारह अंग में, चार अनुयोग में यही कहने में आया था। ऐसा सम्यक् साफ (मार्ग) है। स्वभाव भी पड़ा हुआ है। स्वभाव न पड़ा हो और आश्रय लेना हो (तो आश्रय नहीं होगा) और उसमें मोहरहित-चोररहित मार्ग आपने कहा है। राग के अवलम्बनरहित साफ ध्रुव परम स्वभाव स्थित है। ध्रुव सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... उसमें एकाकार हुआ, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मार्ग आपने कहा है। **तथा सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रय के धारी हैं, वे बिना किसी विघ्न के सुख से...**

मुमुक्षु : .... व्यवहार कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ व्यवहार कहा?

मुमुक्षु : १७२ गाथा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त की बात है। यह पंचास्तिकाय में लिखा है न वह। वह तो निमित्तपना ऐसा ही होता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और वासना की

वृत्ति उठे तो सत्देव, सत्गुरु, सत्शास्त्र—ऐसी ही वृत्ति का वहाँ निश्चय में सम्बन्ध नहीं, परन्तु व्यवहार से मैत्री ऐसी ही (कहने में आती है)। निश्चय से तो उससे विरोध है। उसे व्यवहार से मैत्री गिनकर उससे बढ़ता है, ऐसा आरोप से कथन किया जाता है। तीन काल में दूसरा बदलता नहीं इसमें। तीन काल, तीन लोक। साफ और परम शुद्ध चैतन्य स्थिति है न ऐसा?

वह **मोहरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** अर्थात् व्यवहाररहित निश्चयरत्नत्रय है, वह मार्ग देता है कहा, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। व्यवहार से कुछ कथन साथ में आवे उसे कहा हो वह उपचार का कथन है, वह बन्ध का कारण है। व्यवहार मोक्षमार्ग का राग, वह बन्ध का कारण है। तीन काल तीन लोक में इसमें कहीं बदले, ऐसा नहीं है। परन्तु जगत चिल्लाहट मचा जाए। हाय... हाय...! भगवान की पूजा और भक्ति और शुभराग, वह बन्ध का कारण? अब अनन्त बार बन्ध का कारण, सुन न! एक बार क्या, अनन्त बार। तो फिर नहीं तो छोड़ता किसलिए है? यदि उसमें कुछ लाभ होवे तो उसका लक्ष्य छोड़ता किसलिए है। उसका लक्ष्य छोड़कर स्थिरता होती है या उसे साथ में घसीटकर होती है? ढसरडीने समझे या नहीं समझे? साथ में लेकर। राग को साथ में लेकर अन्दर में जाया जाता होगा स्वभाव में? या राग को छोड़कर जाया जाता है?

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! आपने तो उत्तम मार्ग विघ्नरहित सुख से-सुख से (पहुँच जाए ऐसा बताया है)। ऐसा करके अपना ऐसा स्वभाव है, ऐसा आपने प्रकाशित किया और उसके ओर की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र वह रागरहित, क्लेशरहित, व्यवहाररहित, विकल्परहित से कहकर निर्विघ्न से सुख से-सुख से (पहुँच जाए), ऐसी जो निर्विघ्न दशा मोक्ष की, उसे हम निर्विघ्न मार्ग से प्राप्त करेंगे, ऐसा ही आपने बताया है। यह प्रभु! आपकी बलिहारी है। ऐसा कहते हैं। आपकी भक्ति करनेवाले के राग को भी आपने तो चोर कहा है। नुकसानदार कहा है। आहाहा! उसे मन का विस्तार कहा है। मन विस्तरित होता है। आता है न? पंचास्तिकाय में। मन-मन। क्या कहते हैं? प्रसार, प्रसार। मन पसरता है ऐसे। शुभराग में मन पसरता है। ऐसे अन्दर ढलता नहीं। घर में नहीं आता। पसरता है, मेरा मन चौड़ा होता है। ऐसे परिणमन अन्दर स्थिर नहीं होता परन्तु आपने उस काल में ऐसा हो, ऐसा आपने वर्णन निश्चय से विरोध होने पर भी और मोहरहित

मार्ग से मोहवाला, रागवाला मार्ग विरुद्ध होने पर भी व्यवहार से आपने यह वर्णन किया जानने के लिये कि ऐसी दशा उसे होती है। कहो, समझ में आया?

मोक्ष में चले जाते हैं। **मोक्षमार्ग में गमन करनेवाले प्राणियों को यदि कोई रोकनेवाला है तो मोहरूपी चोर ही है,...** राग और विकल्प, वे स्वरूप की स्थिरता में विघ्न करनेवाले हैं परन्तु उन्हें तो आपने कहा कि वह कोई मार्ग नहीं है। इसलिए हमारे वह कुछ विघ्न नहीं रहा। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी ऐसा आहार खाना, ऐसा पानी पीना, उसका यह करना, यह करना, वह धर्म और यह करते-करते होगा। यह लिखा है इसमें, हों! लो, यह कहते हैं कि पुण्य करते-करते धर्म होगा, यह खोटी बात है। तब और क्या करते थे। पुण्य करते ही। पुण्य का अर्थ शास्त्र में पवित्रता कहा है। ऐसा लिखा है। पुण्य अर्थात् पवित्रता। आता है या नहीं कहीं? वह पवित्रता पाप के अशुभभाव से छूटने की अपेक्षा से। अन्य पवित्रता कहाँ धूल में थी? आहाहा!

अरे! वीतरागी निष्कलंक पन्थ, जिनेन्द्र का निष्कलंक वीतराग मोहरहित पन्थ को मोही जीवों ने घेरा डालकर दूसरे प्रकार से प्ररूपित करके दुनिया के पास कुरूपरूप से रखा है। कुरूपरूप से रखा है। प्रभु! आपने ऐसा कहा नहीं, ऐसा कहते हैं। आपने उसे गिना ही नहीं। अकेला मोक्षत्त्व। नियत.. नियत—निश्चय एक ही मोक्ष पन्थ है। दूसरा कोई मोक्ष पन्थ निश्चय के अतिरिक्त है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

कोई रोकनेवाला है तो मोहरूपी चोर ही है, इसीलिए भव्य जीव सुगमता से मोक्ष को नहीं जाते,... क्या कहा? **भव्य जीव सहसा मोक्ष को नहीं जाते,...** नहीं उस मोह के कारण। और, हे भगवान! आपने मोहरहित मार्ग का वर्णन किया है। मोह होवे तो विघ्न हो। इतनी सुगमता से मोक्ष नहीं मिले। कहो, समझ में आया? चोर हो वहाँ मिले? **इसलिए भव्य जीव, निर्विघ्नरूप से मोक्ष को चले जाते हैं।** छूटते जाते हैं, छूटते जाते हैं, ऐसा कहते हैं। स्वभाव सन्मुख की दृष्टि करके राग से छूटते जाते हैं। आपने छूटने का मार्ग कहा है। राग से छूटने का मार्ग कहा है। राग को रखने का मार्ग आपने कहा नहीं। आपके मार्ग के अन्दर में वह कभी तीन काल में नहीं आता। ३८।

गाथा ३८

उम्मुद्दियम्मि तम्मि हु मोक्खणिहाणे गुणणिहाण तए।
केहिं ण जुणतिणा इव इयरणिहाणाइ भुवणम्मि।।३८।।

अर्थ - हे भगवन! हे गुण-निधान! जिस समय आपने मोक्षरूपी खजाने को खोल दिया था, उस समय ऐसे कौन से भव्य जीव हैं, जिन्होंने सड़े तृण के समान दूसरे राज्य आदि निधानों को नहीं छोड़ दिया ?

भावार्थ - हे जिनेश! हे गुण-निधान! जब तक भव्य जीवों ने मोक्षरूपी खजाने को नहीं समझा था तथा उसके गुणों को नहीं जाना था, तभी तक वे राज्य आदि को उत्तम तथा सुख का करनेवाला समझते थे, किन्तु जिस समय आपने उनको मोक्षरूपी खजाने को खोल कर दिखा दिया, तब उन्होंने राज्य आदि निधानों को सड़े हुए तृण के समान छोड़ दिया अर्थात् वे सब मोक्षरूपी खजाने की प्राप्ति के इच्छुक हो गए।

गाथा - ३८ पर प्रवचन

उम्मुद्दियम्मि तम्मि हु मोक्खणिहाणम्मि गुणणिहाण तए।
केहिं ण जुण्णतिणाइ व इयणिहाणेहिं भुवणम्मि।।३८।।

हे भगवन्त! हे भगवन्! हे **गुणनिधान!** प्रभु! आप तो गुण के निधान / खान हो। गुण की तो खान स्थित हो। ओहोहो! **जिस समय आपने मोक्षरूपी खजाने को खोल दिया था...** आपने मोक्ष की पर्याय कैसे प्राप्त हो और आत्मा में मुक्तस्वभाव कैसा है, यह खोलकर बताया। ऐसा खजाना खुला। वे रत्न पड़े हों न, खोलकर ऐसे बतावे कि देख! यह खजाना, भाई! ले तुझे भरना हो तो ले जा। वे कहते थे। कैसे हैदराबाद के कहलाते हैं ? निजाम सरकार। उनकी कन्या का-पुत्री का विवाह हुआ न, उनके पास खजाना बहुत पड़ा था। देख यह खजाना पड़ा है। ले जा। कितना ले जाए ? बहुत रुपये

होंगे। २३ करोड़ की तो आमदनी थी, बारह महीने की। यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा... वह तो धूल का खजाना। मर जानेवाले हैं दोनों। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा! आप अमृत सरोवर, उसमें से फव्वारा फूटा और उसमें जो आपने मार्ग कहा, वह कैसा मार्ग है? कि मोक्षरूपी खजाना खोल दिया। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण तत्त्व पूरा पड़ा है। वस्तु तो मोक्षस्वरूप ही है। क्या कहा? हे भगवान! आपने तो वस्तु को मोक्षस्वरूप खोल दिया है। वह वस्तु मुक्तस्वरूप है, उसमें ज्ञान, आनन्द शक्तियाँ पूर्ण मुक्त पड़ी है। मुक्त ही है। पर्याय में तेरी दृष्टि राग की एकता में और पुण्य तथा निमित्त की एकता में उस खजाने की खबर तुझे नहीं पड़ती। भगवान ने खोलकर बताया है।

कहते हैं कि ऐसे खजाने को पाकर कौन भव्य जीव है कि **जिन्होंने सड़े तृण के समान दूसरे राज्य आदि निधानों को नहीं छोड़ दिया।** क्या कहते हैं? आत्मा का निधान आपने प्रभु बताया न। गुणनिधान कहा था न पहले? उस गुण का निधान खजाना चैतन्य चमत्कार प्रभु ऐसा बताया। उसके समक्ष राज आदि के निधान सड़े हुए तिनके। सड़ा हुआ समझते हो न? सड़ गया हुआ कचरा। सड़ गया हुआ कचड़ा। जूठन है। सड़ा हुआ कचरा होता है न? उकड़ा को क्या कहते हैं? कूड़ा, कचड़े का ढ़ेर। कचड़े का ढ़ेर होता है न सड़ा हुआ। सवेरे निकालते हैं न? यह बैल और भैंसे हों, वहाँ सड़े हुए तिनके, कण्डे, राख डाल दे, महिलाएँ डाल देती हैं। वहाँ घर में डालती होगी यह।

प्रभु आपने यह खजाना बताया। चैतन्य चमत्कार तेरे आत्मा में प्रभुता पड़ी है। तेरे आत्मा में स्वयं परमेश्वर पद पड़ा है। उस परमेश्वर पद का अब पर्याय में इनलार्ज कर। अन्दर प्रगट कर। ऐसे खजाने की बात की है। प्रभु! (उसे) प्रकट करने के लिये किसने राग नहीं छोड़ा होगा? और राग के निधान किसने (रखे होंगे)? सड़े हुए तिनके को छोड़। ... उसके प्रति का राग छोड़ा, इसलिए खजाना छोड़ा कहलाता है। इस खजाने के समक्ष उस खजाने की कुछ कीमत नहीं है। अरबों रुपये हों और चक्रवर्ती का राज। ... छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियाँ और छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें करोड़ गाँव, अड़तालीस हजार पाटण, बहत्तर हजार नगर। इस खजाने की मिठास—चैतन्य के अन्तर शान्त और आनन्द अविकारी स्वभाव की मिठास, उस

मिठास को खोलने गये (तो) सब छूट गया। कौन भव्य जीव नहीं होगा? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। **कौन भव्य जीव नहीं होगा?** ऐसा कौन भव्य जीव होता है **कि जिन्होंने यह नहीं छोड़ दिया।**

हे **जिनेश!** हे प्रभु! गुणनिधान! **जब तक भव्य जीवों ने मोक्षरूपी खजाने को...** जाना नहीं था। खबर नहीं कि क्या चीज़ है। तुझमें रत्न पड़े हैं। विशाल समुद्र के नीचे रत्न। स्वयंभूरमण समुद्र में रत्न के ढ़ेर पड़े हैं। रेत नहीं, रत्न (भरे हैं)। इसी प्रकार भगवान के—आत्म भगवान के अन्तर स्वभाव में अनन्त गुण के निधान रत्न पड़े हैं। ऐसा आपने जहाँ बताया... कहो, भगवानजीभाई! इस धूल को निकाल डाला। नग्न हो गये, नग्न—नग्न दिगम्बर। आहाहा! यह खजाना खोलने में हमें अब वक्त विकल्प का भी रहा नहीं। तो उसे रखें और उसे छोड़ें। छोड़े कौन? सामने देखा नहीं। चक्रवर्ती के राज के सामने देखा नहीं। कहो, समझ में आया? **खजाने को नहीं समझा था तथा उसके गुणों को नहीं जाना था...** आत्मा के गुण। देखो न! आता है न सवेरे, वे गुण? कितनी शक्तियाँ आत्मा में है। शक्ति की संख्याएँ, हों! ऐसी संख्या का सत्त्व और सामर्थ्य हमने जाना नहीं था।